एस.एस. निज्जर और जे.एस. नारंग, न्यायमूर्ति, के समक्ष

गुलाब सिंह,-याचिकाकर्ता

बनाम

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय और अन्य, उत्तरदाता

सी.डब्ल्यू.पी. 2003 की संख्या 13721

27 सितम्बर 2004

भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद.226-महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम-धारा 9 (14)-प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न करना, सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध तथ्यात्मक एवं कानूनी आधार लेकर वैधानिक अपील दायर-अपील प्राधिकारी ने सुनवाई का अवसर दिए बिना और अपील में लिए गए आधारों पर विचार किए बिना अपील को खारिज कर दिया-क्या अपीलीय प्राधिकारी के लिए याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं था क्योंकि वह अपीलीय चरण में कुछ भी नया नहीं जोड़ सकता था - माना गया, नहीं-विश्वविद्यालय अधिनियम में पीड़ित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने वाले किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, अपीलीय प्राधिकारी को एक उचित प्रक्रिया अपनानी होगी जो यह सुनिश्चित करेगी कि अपीलकर्ता को अपना पक्ष रखने का उचित अवसर दिया जाए। मामले में न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि मुख्य रूप से होते हुए दिखना भी चाहिए - यह अपीलीय प्राधिकारी पर निर्भर था कि वह न केवल याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दे, बल्कि उसके द्वारा उठाए गए विवादों से निपटने के लिए एक तर्कसंगत आदेश भी पारित करे। अपील-याचिका की अनुमति दी गई, याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद एक नया तर्कसंगत आदेश पारित करके मामले को निर्णय लेने के लिए वापस भेजते हुए अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को रद्द कर दिया गया।

माना गया कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 9(14) के अवलोकन से पता चलता है कि विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। ऐसी परिस्थितियों में, निस्संदेह, कुलाधिपति को एक उचित प्रक्रिया अपनानी होगी, जो यह सुनिश्चित करेगी कि अपीलकर्ता को अपना मामला प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया जाए। प्रक्रिया को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह स्वीकृत सिद्धांत का अनुपालन करे कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से होता हुआ दिखना भी चाहिए।

(पैरा 9)

माना गया कि याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देना अपीलीय प्राधिकारी का दायित्व है। प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के चांसलर द्वारा पारित आदेश स्पीकिंग ऑर्डर की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। आदेश में ऐसा कोई कारण नहीं बताया गया है जिससे कुलाधिपति को याचिकाकर्ता द्वारा दायर विस्तृत अपील को खारिज करना पड़े। आदेश में अपील के आधार का भी जिक्र नहीं है। आदेश केवल बर्खास्तगी का आदेश पारित होने तक की कार्यवाही का क्रम बताता है। चूंकि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा की गई शिकायतों के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक नहीं है।

(पैरा 17 एवं 20)

याचिकाकर्ता के वकील आनंद छिब्बर।

प्रतिवादियों की ओर से बैरम गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्रीश गुप्ता, अधिवक्ता।

निर्णय

एस.एस. निज्जर, न्यायमूर्ति (मौखिक)

(1) पक्षों के वकील की सहमति से, मामले को प्रस्ताव चरण में अंतिम निपटान के लिए लिया जाता है।

(2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत इस रिट याचिका में, याचिकाकर्ता 13 सितंबर, 2001 के संकल्प (अनुलग्नक पी-9) को खारिज करते हुए सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट जारी करने की प्रार्थना करता है, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा और याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करते हुए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2003 (अनुलग्नक पी-12)।खारिज कर दिया गया है।

(3) याचिकाकर्ता प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के साथ अधीक्षक के रूप में कार्यरत था। वह पक्का कर्मचारी है. 3 अप्रैल, 2000 को याचिकाकर्ता और याचिकाकर्ता के अधीनस्थ कुछ

अन्य कर्मचारियों के खिलाफ प्रारंभिक जांच की गई। प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर विचार करने पर, 22 अगस्त, 2000 को याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आरोप पत्र (अनुलग्नक पी -4) जारी किया गया था। यह आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता अनुभाग की पर्याप्त निगरानी करने में विफल रहा था जिसमें वह प्रभारी अधीक्षक थे, जिसके परिणामस्वरूप रिकॉर्ड में बड़े पैमाने पर गड़बड़ी हुई। परिणाम-पत्रों के साथ बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ की गई, परिणाम-पत्रों के पन्ने हटा दिए गए, मनगढ़ंत और नकली परिणाम-पत्र तैयार किए गए और मूल परिणाम-पत्रों के स्थान पर चिपकाए गए। आपराधिक इरादे से और इसकी मौलिकता को नष्ट करने के उद्देश्य से मूल चिह्नों को मिटा दिया गया और उनसे छेड़छाड़ की गई। यह भी आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता ने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ मिलकर रिकॉर्ड के साथ छेड़छाड़ की। याचिकाकर्ता ने आरोप-पत्र का उत्तर (अनुलग्नक पी4ए) प्रस्तुत किया। इसके बाद नियमित जांच कराई गई। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप सिद्ध पाए गए। जांच रिपोर्ट (अनुलग्नक पी-5) 24 जून, 2001 को प्रस्तुत की गई थी। इस पर उत्तरदाताओं-विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद द्वारा विचार किया गया था। 6 अगस्त, 2001 को याचिकाकर्ता को बर्खास्तगी का बड़ा जुर्माना लगाने के लिए कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए प्रस्ताव (अनुलग्नक पी-6) पारित किया गया था। कारण बताओ नोटिस (अनुलग्नक पी-7) 10 अगस्त, 2001 को विधिवत जारी किया गया था। याचिकाकर्ता ने 10 अगस्त, 2001 को कारण बताओ नोटिस का उत्तर (अनुलग्नक पी-8) प्रस्तुत किया। शो के उत्तर पर विचार करने के बाद- कारण सूचना, प्रतिवादी-विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद ने 13 सितंबर, 2001 को आयोजित अपनी बैठक में प्रस्ताव पारित करके याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का निर्णय लिया (अनुलग्नक पी-9)। उपरोक्त निर्णय की सूचना याचिकाकर्ता को दिनांक 24 सितंबर, 2001 के पत्र (अनुलग्नक पी-10) द्वारा दी गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के चांसलर के समक्ष एक वैधानिक अपील (अनुलग्नक पी-11) प्रस्तुत की। इस अपील में, याचिकाकर्ता ने बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देने के लिए कई तथ्यात्मक और कानूनी आधार पेश किए थे। यह कहा गया था कि आक्षेपित आदेश (अनुलग्नक पी-10) सक्षम प्राधिकारी यानी नियुक्ति प्राधिकारी या वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा की गई कई तथ्यात्मक त्रुटियों पर प्रकाश डाला गया। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना, उत्तरदाताओं-विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2003 (अनुलग्नक पी-12) द्वारा खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने पूरी कार्यवाही को इस आधार पर चुनौती दी कि हर चरण में प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ है। यह भी देखा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को 6 अप्रैल, 2000 के आदेश (अनुलग्नक पी-3) द्वारा निलंबित कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने इस निलंबन के आदेश को भी चुनौती दी है.

(4) उत्तरदाताओं द्वारा लिखित बयान दायर किए गए हैं। दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पूरी तरह साबित हो चुके हैं। पूरे मामले पर विचार करने के बाद कार्यकारी परिषद ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है:-

"श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक (निलंबन के तहत) (अनुलग्नक III पृष्ठ 31-35 पहले ही प्रसारित) के दिनांक 24 अगस्त, 2001 के जवाब पर विचार किया गया, जो उन्हें विश्वविद्यालय सेवा से बर्खास्तगी के लिए दिए गए कारण बताओ नोटिस के ज्ञापन क्रमांक के तहत दिया गया था। ईएन.11/2001/11529, दिनांक 24 जून, 2001 (अनुलग्नक Vपृष्ठ 37-72, पहले ही परिचालित)।

परिषद ने श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक (निलंबन के तहत) को दी गई चार्जशीट, आरोप-पत्र पर उनके लिखित उत्तर, श्री एस.एस. सिंह दहिया, जिला एवं सत्र न्यायाधीश (सेवानिवृत्त) द्वारा की गई कार्यवाही सहित पूरे रिकॉर्ड पर विचार और अवलोकन किया । जांच अधिकारी, दोनों पक्षों के मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य रिकॉर्ड पर उपलब्ध हैं।

परिषद आश्वस्त थी कि जांच अधिकारी ने प्रक्रिया, प्राकृतिक न्याय के नियमों और विश्वविद्यालय के गैर-शिक्षण कर्मचारियों के लिए सेवा और आचरण नियमों के अनुसार निष्पक्ष और विवेकपूर्ण तरीके से जांच की है। श्री गुलाब सिंह को अपना बचाव करने का उचित एवं पूरा अवसर दिया गया है।

जांच रिपोर्ट के अनुसार, श्री गुलाब सिंह के खिलाफ आरोप ठोस, ठोस और अकाट्य रूप से साबित हुए हैं।

श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक (निलंबनाधीन) को भी परिषद द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई का मौका दिया गया। अपने लिखित उत्तर और पूछताछ के दौरान उन्होंने जो बताया है, उसके अलावा वह कुछ भी नया नहीं बता सके।

इसलिए, आरोपों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, परिषद ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक (निलंबन के तहत) को तत्काल

प्रभाव से सेवा से बर्खास्त करने का दंड दिया जाए।

आगे संकल्प लिया गया कि जांच रिपोर्ट को इस आदेश के हिस्से के रूप में पढ़ा जाएगा।''

(5) उत्तरदाताओं-विश्वविद्यालय के अनुसार उपरोक्त निर्णय प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन करते हुए लिया गया है। इसके बाद कुलाधिपति द्वारा स्पीकिंग ऑर्डर पारित कर याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया गया है।

(6) याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री आनंद ने जोरदार ढंग से तर्क दिया कि पूरी कार्यवाही दूषित हो गई है क्योंकि याचिकाकर्ता को प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप बिना किसी आधार के हैं और जांच के निष्कर्ष बिना किसी सबूत पर आधारित हैं। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार पूरी विभागीय कार्यवाही दिखावा थी। अपीलीय स्तर पर भी, याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया और इस प्रकार, पूरी कार्यवाही दूषित हो गई है और रद्द होने योग्य है। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, विद्वान वकील ने केनरा बैंक और अन्य के बनाम श्री देबासिस दास और अन्य[1], और राम निवास बंसल बनाम स्टेट बैंक ऑफ पटियाला[2] में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का फैसले पर भरोसा किया है

(7) उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बलराम गुप्ता ने प्रस्तुत किया है कि अधिकारियों ने हर चरण में अच्छी तरह से तर्कपूर्ण आदेश पारित किए हैं। अतः याचिकाकर्ता के किसी कानूनी अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे कहा है कि अपीलीय चरण में, याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उन्हें सुनवाई का पर्याप्त अवसर दिया गया। याचिकाकर्ता अपीलीय स्तर पर कुछ भी नया नहीं जोड़ सकता था। इसलिए, याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देना अपीलीय प्राधिकारी के लिए निरर्थक प्रयास होगा। चांसलर किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई के संबंध में कार्यकारी परिषद या कुलपति द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपीलीय प्राधिकारी के रूप में महर्षि

---

(1) जे.टी. 2003 (3) एस.सी. 183

(2) 1998 (4) एस.एल.आर. 711 (एफ.बी.)

दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम (बाद में "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 9 (14) के तहत कार्य करता है। किसी भी कर्मचारी के खिलाफ कार्रवाई उपरोक्त धारा विशेष रूप से पीड़ित कर्मचारी को सुनवाई का अवसर देने का प्रावधान नहीं करती है । इस अतिरिक्त कारण से भी याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर देना आवश्यक नहीं था। प्रस्तुतियाँ के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ वकील एफ.एन. में दिए गए निर्णयों पर भरोसा करते हैं। रॉय बनाम कलेक्टर या सीमा शुल्क, कलकत्ता और अन्य[3], भारत संघ बनाम ज्योति प्रकाश मित्तर[4], स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम महेंद्र कुमार सिंघल[5] और भारत संघ और अन्य। बनाम मैसर्स जीसस सेल्स कॉर्पोरेशन[6] ।

(8) अधिनियम की धारा 9(14) इस प्रकार है:-

> "9 (14): विश्वविद्यालय का कोई भी कर्मचारी जो अपने खिलाफ की गई किसी अनुशासनात्मक कार्रवाई के संबंध में कार्यकारी परिषद या कुलपति के निर्णय से व्यथित है, वह निर्धारित तरीके से कुलाधिपति को एक स्मारक संबोधित कर सकता है। क़ानून द्वारा और कुलाधिपति का निर्णय अंतिम होगा।"

(9) उपरोक्त धारा के अवलोकन से पता चलता है कि विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित नहीं की गई है। ऐसी परिस्थितियों में, निस्संदेह, कुलाधिपति को एक उचित प्रक्रिया अपनानी होगी, जो यह सुनिश्चित करेगी कि अपीलकर्ता को अपना मामला प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया जाए। प्रक्रिया को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि यह उस पवित्र सिद्धांत का अनुपालन करे कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से होते हुए दिखना भी चाहिए। न्याय किए जाने और होते हुए देखे जाने के बीच के अंतर को कई मामलों में स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया गया है। इस कहावत का महत्व लॉर्ड विडगेरी सी.जे. द्वारा आर.वी. के मामले में संक्षेपित किया गया था। गृह सचिव, पूर्व. पी. होसेनबॉल[7], (7), जैसा कि "प्राकृतिक न्याय

---

(3) एआईआर 1957 एस.सी. 648

(4) एआईआर 1971 एस.सी. 1093

(5) 1995 (5) एस.एल.आर. 4

(6) जे.टी. 1996 (3) एस.सी. 597

(7) (1977) 1 डब्ल्यू.एल.आर. 766, 772

के सिद्धांत वे मौलिक नियम हैं, जिनका उल्लंघन न्याय को होते हुए दिखने से रोक देगा"। उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. (मिस) बीनापाणि देई,[8] (8) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि "यहां तक कि एक प्रशासनिक आदेश जिसमें नागरिक परिणाम शामिल हों.... अवश्य होना चाहिए प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप बनाया जाए"। प्रश्न यह है कि नागरिक परिणाम क्या होंगे मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली [9] के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए इस प्रकार उत्तर दिया:-

> "लेकिन एक नागरिक परिणाम क्या है, आइए हम मौखिक मूर्खतापूर्ण जाल से गुजरते हुए खुद से पूछें? "नागरिक परिणाम" निस्संदेह न केवल संपत्ति या व्यक्तिगत अधिकारों का बल्कि नागरिक स्वतंत्रता, भौतिक अभाव और गैर-आर्थिक क्षति का उल्लंघन भी शामिल है। अपने व्यापक रूप में अर्थ, जो कुछ भी एक नागरिक को उसके नागरिक जीवन में प्रभावित करता है उसका एक नागरिक परिणाम होता है।"

(10) श्मिट बनाम गृह राज्य सचिव[10] के मामले में, लॉर्ड डेनिंग एम.आर. ने निम्नानुसार कहा: -

> "रिज बनाम बाल्डविन, (1964) एसी 40 के भाषणों से पता चलता है कि एक प्रशासनिक निकाय, एक उचित मामले में, अपने निर्णय से प्रभावित व्यक्ति को प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने के लिए बाध्य हो सकता है। यह सब इस पर निर्भर करता है कि क्या वह उसका कोई अधिकार या हित है या, मैं कुछ वैध अपेक्षाएँ जोड़ूँगा, जिससे उसे वंचित करना उचित नहीं होगा।"

(11) हम श्री गुप्ता की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि अपीलीय प्राधिकारी के लिए याचिकाकर्ता को सुनना आवश्यक नहीं था क्योंकि वह कुछ भी नया नहीं कह सकते थे। इसी प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने एस.एल. के मामले में विचार किया है। कपूर बनाम जगमोहन और अन्य[11]। उपरोक्त मामले में, चिन्नप्पा रेड्डी, जे. ने सर्वोच्च न्यायालय की ओर से बोलते हुए निम्नानुसार कहा:-

---

(8) एआईआर 1967 एस.सी. 1269

(9) एआईआर 1978 एस.सी. 851

(10) (1969) 2 अध्याय। 149

(11) एआईआर 1981 एस.सी. 136

"17. इस प्रश्न के साथ यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि क्या प्राकृतिक न्याय का पालन करने में विफलता से कोई फर्क पड़ता है, यदि प्राकृतिक न्याय के पालन से कोई फर्क नहीं पड़ता, तो स्वीकृत या निर्विवाद तथ्य स्वयं बोल रहे हैं। जहां केवल स्वीकृत या निर्विवाद तथ्य ही हैं एक निष्कर्ष संभव है और कानून के तहत केवल एक दंड की अनुमति है, अदालत प्राकृतिक न्याय के पालन के लिए बाध्य करने के लिए अपनी रिट जारी नहीं कर सकती है, इसलिए नहीं , प्राकृतिक न्याय का पालन न करने को मंजूरी देता है, लेकिन क्योंकि अदालतें निरर्थक रिट जारी नहीं करती हैं। लेकिन यह अन्य स्थितियों में लागू करने के लिए एक खतरनाक सिद्धांत होगा जहां निष्कर्ष विवादास्पद हैं, हालांकि थोड़ा और दंड विवेकाधीन हैं।"

> कानून के तहत केवल एक दंड की अनुमति है, अदालत प्राकृतिक न्याय के पालन के लिए बाध्य करने के लिए अपनी रिट जारी नहीं कर सकती है, इसलिए नहीं प्राकृतिक न्याय का पालन न करने को मंजूरी देता है, लेकिन क्योंकि अदालतें निरर्थक रिट जारी नहीं करती हैं। लेकिन यह अन्य स्थितियों में लागू करने के लिए एक खतरनाक सिद्धांत होगा जहां निष्कर्ष विवादास्पद हैं, हालांकि थोड़ा और दंड विवेकाधीन हैं।"

(12) रिज बनाम बाल्डविन[12], (12) में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स के समक्ष यही तर्क उठाया गया था कि भले ही अपीलकर्ता को वॉच कमेटी द्वारा सुना गया हो, उसके द्वारा कही गई किसी भी बात से कोई फर्क नहीं पड़ता। तर्क खारिज कर दिया गया. जॉन बनाम रीस[13] के मामले में भी इसी तरह का तर्क उठाया गया था। मेगर्री, जे. ने इस प्रकार देखा:-

> "ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसे लोग हों जो प्राकृतिक न्याय के नियमों के पालन को अदालतों द्वारा दिए जाने वाले महत्व की निंदा करेंगे। जब कुछ स्पष्ट है, तो वे कह सकते हैं कि हर किसी को फ्रेमिंग में शामिल समय की थकाऊ बर्बादी से गुजरने के लिए क्यों मजबूर किया जाए आरोप और सुनवाई का अवसर देना? परिणाम शुरू से ही स्पष्ट है। जो लोग इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं वे सोचते नहीं हैं, स्वयं न्याय करते हैं। क्योंकि हर कोई जिसका कानून से कोई लेना-देना है वह अच्छी तरह से जानता है कि कानून का रास्ता बिखरा हुआ है खुले और बंद मामलों के उदाहरण, जो, किसी भी तरह,

(12) (1964) ए.सी. 40

(13) (1970) 1 अध्याय. 345

निर्विवाद आरोपों के नहीं थे, जिनका, घटना में, पूरी तरह से उत्तर दिया गया था; अकथनीय आचरण के, जिन्हें पूरी तरह से समझाया गया था; निश्चित और अपरिवर्तनीय दृढ़ संकल्पों के, जिनमें चर्चा के द्वारा परिवर्तन हुआ। न ही वे हैं मानव स्वभाव के किसी भी ज्ञान के साथ, जो एक पल के लिए सोचते हैं, उन लोगों की नाराजगी की भावनाओं को कम आंकने की संभावना है, जो पाते हैं कि घटनाओं के पाठ्यक्रम को प्रभावित करने का कोई अवसर दिए बिना उनके खिलाफ निर्णय लिया गया है।"

(13) इसी तरह के प्रश्न पर सुप्रीम कोर्ट ने केनरा बैंक और अन्य के मामले में विचार किया था। (सुप्रा), अरिजीत पसायत, जे. ने केस कानून के संपूर्ण पहलू पर विचार किया और निम्नानुसार देखा: -

"21. फिर न्यायालयों में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की व्याख्या कैसे की गई है और उन्हें किस सीमा तक सीमित रखा जाना चाहिए? वर्षों से न्यायिक प्रक्रिया द्वारा न्यायिक प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो नियमों को विकसित किया गया है, जिसमें अर्ध न्यायिक और प्रशासनिक प्रक्रिया भी शामिल है। वे निष्पक्ष सुनवाई के बुनियादी तत्वों का गठन करते हैं, जिनकी जड़ें निष्पक्षता और न्याय के लिए मनुष्य की सहज भावना में हैं, जो किसी विशेष जाति या देश का संरक्षण नहीं है बल्कि सभी पुरुषों द्वारा साझा किया जाता है। पहला नियम है निमो ज्यूडेक्स इन कॉसा सुआ या निमो डिबेट एस्से ज्यूडेक्स इन प्रोप्रिया कॉसा सुआ जैसा कि (1605) 12 सी. प्रतिनिधि 114 में कहा गया है, यानी कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होगा। कोक ने प्रोप्रिया कॉसा क्विआ नॉट पोटेस्ट एस्से ज्यूडेक्स एट पार्स (कंपनी लिट, 1418) में एलिक्विस नॉन डिबेट एसे ज्यूडेक्स फॉर्म का इस्तेमाल किया, यानी, किसी भी व्यक्ति को अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। एक ही समय में एक पार्टी हो. फॉर्म निमो पोटेस्ट एस्से सिमुल एक्टर एट ज्यूडेक्स, जिसका अर्थ है कि कोई भी एक बार में प्रेमी और न्यायाधीश नहीं हो सकता है, इसका भी कई बार उपयोग किया जाता है। दूसरा नियम है ऑडी अल्टर्राम पार्टेम, यानी दूसरे पक्ष को सुनें। कभी-कभी और विशेष रूप से महाद्वीपीय देशों में, ऑडिटर एट अल्टेरा पार्स का उपयोग किया जाता है, जिसका अर्थ बिल्कुल एक ही होता है। उपरोक्त दो नियमों और विशेष रूप से ऑडी अल्टरम पार्टम

नियम से एक परिणाम निकाला गया है, जिसका नाम है क्वि एलिक्विड स्टैच्यूरिट पार्ट इनॉडिटा अल्टरम एक्टक्वम लिसेट डिक्सेरिट, हौड एक्वम फेसेरिट यानी, वह जो दूसरे पक्ष को सुने बिना कुछ भी तय करेगा, हालांकि वह हो सकता है कि जो सही है वह कहा गया हो, जो सही है वह नहीं होगा (बोसवेल का मामला देखें या दूसरे शब्दों में, जैसा कि अब व्यक्त किया गया है, न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। जब भी कोई आदेश रद्द किया जाता है प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में अमान्य होने के कारण, मामले का कोई अंतिम निर्णय नहीं होता है और नई कार्यवाही छोड़ दी जाती है। जो कुछ किया जाता है वह अंतर्निहित दोष के आधार पर विवादित आदेश को रद्द करना है, लेकिन कार्यवाही समाप्त नहीं की जाती है।

22. जिसे बेकार औपचारिकता सिद्धांत के रूप में जाना जाता है, उस पर एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ। में इस न्यायालय में विचार किया गया है। इसे निम्नानुसार देखा गया:-

"इससे पहले कि हम इस विवाद के अंतिम पहलू पर जाएं, हम यह बताना चाहेंगे कि यह मामला उल्लंघन से संबंधित है प्राकृतिक न्याय वहाँ भी होता है जहाँ सभी तथ्य नहीं होते स्वीकार किए गए या सभी विवाद से परे नहीं हैं। के संदर्भ में उन मामलों में काफी केस-कानून है और इस बारे में साहित्य कि क्या राहत देने से इनकार किया जा सकता है, भले ही अदालत सोचती है कि आवेदक का मामला नहीं है 'वास्तविक सार' में से एक या कोई सारभूत नहीं है उसकी सफलता की संभावना या परिणाम नहीं होगा भिन्न, भले ही प्राकृतिक न्याय का पालन किया जाए (देखें)। मैलोच बनाम एबरडीन कॉर्पोरेशन (1971)2 सभी ईआर 1278, एचएल) (लॉर्ड रीड और लॉर्ड विबरफोर्स के अनुसार), ग्लिन बनाम कील विश्वविद्यालय। (1971) 2 सभी ईआर 89; सिनेमोंड बनाम ब्रिटिश एयरपोर्ट अथॉरिटी (1980) 2 सभी ईआर 368, सीए) और अन्य मामले जहां ऐसा दृश्य है रोक लिया गया था। इस दृश्य में नवीनतम जोड़ है आर.वी. ईलिंग मजिस्ट्रेट कोर्ट, पूर्व। पी। फन्नारन (1996 (8) प्रशासन एलआर 351, 358) (डी स्मिथ, सप्ल देखें। पी.89 (1998) जहां स्ट्रॉटन, एल.जे. ने उसे वहां रखा परिणाम को संदेह से परे प्रदर्शित किया जाना चाहिए अलग होता. लॉयड में लॉर्ड वूल्ट बनाम एमसी मोहन (1987 (1) सभी ईआर 1118, सीए) है कुछ मामलों में विवेक का खंडन भी नापसंद नहीं है प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन के मामले. न्यूज़ीलैंड एमसी

कैर्थी बनाम ग्रांट में न्यायालय (1959 एनजेडएलआर 1014) हालाँकि, जब यह कहा जाता है तो यह आधे रास्ते पर चला जाता है (जैसे कि पक्षपात का मामला), आवेदक के लिए यह दिखाना पर्याप्त है कि 'वास्तविक आजीविका है-निश्चितता नहीं-की पूर्वाग्रह।' दूसरी ओर, गार्नर एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (8वां संस्करण 1996, पृ. 271-72) यह मामूली बात कहता है इसका प्रमाण है कि परिणाम भिन्न होता पर्याप्त। तर्क के दूसरी तरफ, हम रिज बनाम बाल्डविन से अलग है [1964 एसी 40: (1963) 2 ऑल ईआर 66, एचएल), मेगर्री, जे. जॉन बनाम में रीस [1969] (2) सभी ईआर 274] बताते हुए कि वहाँ हैं मामलों को हमेशा खोलें और बंद करें और इसका कोई पूर्ण नियम नहीं है पूर्वाग्रह का प्रमाण दिया जा सकता है। गुण नहीं हैं न्यायालय के लिए नहीं बल्कि विचार करने के अधिकार के लिए। एक्नेर, जे. ने कहा है कि निरर्थक औपचारिकता सिद्धांत एक है खतरनाक और, हालांकि, असुविधाजनक, प्राकृतिक न्याय का पालन होना चाहिए. उनके आधिपत्य ने इसका अवलोकन किया असुविधा और न्याय अक्सर नहीं होते बातचीत जारी है। अभी हाल ही में, लॉर्ड बिंघम ने टेम्स वैली पुलिस फोर्सेज के आर. वी. चीफ कांस्टेबल, एक्स.पी. में बेकार औपचारिकता सिद्धांत की निंदा की है। कॉटन (1990 आईआरएलआर 344) ने छह कारण बताए (उनका लेख भी देखें क्या सार्वजनिक कानून उपचार विवेकाधीन होना चाहिए?" 1991 पीएल. पृष्ठ 64)। बेकार औपचारिकता सिद्धांत की एक विस्तृत और जोरदार आलोचना प्राकृतिक न्याय में बहुत पहले की गई है, कनाडा के प्रो. डी.एच. क्लार्क द्वारा पदार्थ या छाया (1975 पीएल देखें। पृ. 27-63) यह तर्क देते हुए कि मैलोच (सुप्रा) और ग्लिन (सुप्रा) का निर्णय गलत तरीके से किया गया था। फॉल्क्स (प्रशासनिक कानून, 8वां संस्करण 1996, पृ. 323) , क्रेग (प्रशासनिक कानून, तीसरा संस्करण, पी. 596) और अन्य का कहना है कि अदालत पूर्व निर्धारित नहीं कर सकती कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी द्वारा क्या निर्णय लिया जाना है। डी स्मिथ (5वां संस्करण, 1994, पैरा 10.031 से 10.036) का कहना है कि अदालतों ने ऐसा नहीं किया है फिर भी खुद को किसी एक दृष्टिकोण के लिए प्रतिबद्ध किया है, हालांकि विवेक हमेशा अदालत के पास है। वेड (प्रशासनिक कानून, 5वां संस्करण 1994, पृ. 526-530) का कहना है कि हालांकि निरर्थक रिट जारी नहीं की जा सकती हैं, लेकिन इसके अनुसार एक अंतर बनाना होगा निर्णय की प्रकृति। इस प्रकार, स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों से संबंधित मामलों के अलावा अन्य मामलों के संबंध में, इस बात पर काफी

मतभेद है कि क्या आवेदक को यह साबित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है कि परिणाम उसके पक्ष में होगा या उसे साबित करना होगा ठोस मामले में या यदि वह सफलता की 'वास्तविक संभावना' साबित कर सकता है या यदि सफलता की कुछ दूरस्थ संभावना होने पर भी वह राहत का हकदार है। हालाँकि, हम यह बता सकते हैं कि ऐसे मामलों में भी जहां सभी तथ्य स्वीकार नहीं किए गए हैं या विवाद से परे हैं, इस बात पर काफी सर्वसम्मति है कि अदालतें, अपने विवेक का प्रयोग करते हुए,

प्राकृतिक न्याय होने के बावजूद उत्प्रेषण, निषेध, परमादेश या निषेधाज्ञा से इनकार कर सकती हैं। पालन नहीं किया जाता. हम यह भी कह सकते हैं कि स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. जैसे मामलों की एक और श्रृंखला है। शर्मा [जेटी 1996 (3) एससी 722], राजेंद्र सिंह बनाम स्टेट ऑफ एमपी, [जेटी 1996 (7) एससी 216] वह भी वैधानिक के संबंध में जिन प्रावधानों में नोटिस की आवश्यकता होती है, उन मामलों के बीच अंतर किया जाना चाहिए जहां प्रावधान व्यक्तिगत लाभ के लिए है और जहां प्रावधान सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए है। पहले मामले में, इसे माफ किया जा सकता है जबकि दूसरे मामले में, इसे माफ नहीं किया जा सकता है।

हम 'बेकार औपचारिकता सिद्धांत' की शुद्धता या अन्यथा पर कोई राय व्यक्त करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं और मामले को उचित मामले में निर्णय के लिए छोड़ देते हैं, भले ही हमारे सामने मामला हो, 'स्वीकृत और निर्विवाद' तथ्य बताते हैं कि रिट का अनुदान जैसा कि चिन्नप्पा रेड्डी, जे ने बताया, व्यर्थ होगा।"

(14) उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर, हम श्री बलराम गुप्ता की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं था। इसी प्रश्न पर राम निवास बंसल (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा भी विचार किया गया था। इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा जो प्रश्न उठाया गया वह इस प्रकार था:-

"क्या, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला (अधिकारी) सेवा विनियम, 1979 के विनियमन 70 में एक विशिष्ट प्रावधान की अनुपस्थिति में, विभागीय कार्यवाही में

अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष एक दोषी अधिकारी को व्यक्तिगत सुनवाई का अधिकार दिया गया है, न्यायालय ऐसे नियम को पढ़ेगा और मैक्सिम ऑडी अल्टरम पार्टेम के आवेदन पर ऐसी सुनवाई का अधिकार प्रदान करना, सटीक प्रश्न है जो इस रिट याचिका में पूर्ण पीठ के विचाराधीन है।"

(15) उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए पूर्णपीठ द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है:-

"36। उपरोक्त कारणों से हमारा मानना है कि राम चंदर (सुप्रा) के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून अभी भी लागू है। इसके अलावा, हमारा विचार है कि विनियम 70 की भाषा में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, अपराधी अधिकारी को अपीलीय चरण में सुनवाई के लिए पूछने का अधिकार होगा। ऐसा अधिकार आवेदक को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से प्राप्त होता है। अधिकतम का पालन न करना ऑडी अल्टरम पार्टेम की, जहां इसकी मांग अपराधी अधिकारी द्वारा की गई है, यह दोषी अधिकारी के मामले के लिए प्रतिकूल होगा और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को प्रभावित करेगा, जो इतनी व्यापक शक्तियों और विवेक का प्रतिकूल प्रयोग करेगा।"

(16) इसके अलावा, राम चंदर बनाम भारत संघ और अन्य[14] के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा कानून तय किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं-

"25. ..... हमारे उद्देश्यों के लिए इस जटिल प्रश्न पर जाना आवश्यक नहीं है कि क्या निर्णय के बाद की सुनवाई प्रारंभिक चरण में सुनवाई के अधिकार से इनकार का विकल्प है या पालन प्राकृतिक न्याय के नियम, क्योंकि तुलसीराम पटेल के मामले में बहुमत ने स्पष्ट रूप से कहा है कि एकमात्र चरण जिस पर एक सरकारी कर्मचारी को उसके संबंध में प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर मिलता है, यानी खुद को दोषमुक्त करने का अवसर मिलता है। आरोप यह दिखाकर कि जांच में पेश किए गए सबूत विश्वसनीयता या विचार के योग्य नहीं हैं या उनके खिलाफ साबित किए गए आरोप ऐसे चरित्र के नहीं हैं कि बर्खास्तगी या निष्कासन या रैंक में कमी के चरम दंड के योग्य हों और इनमें से कोई भी उनके मामले में कम

(14) 1986 (2) एस.एल.आर. 608

सज़ाएं पर्याप्त होनी चाहिए थीं, यह विभागीय अपील की सुनवाई के चरण में है। कानूनी स्थिति होने के कारण, तुलसीराम पटेल के मामले में बहुमत द्वारा व्याख्या के अनुसार बयालीसवें संशोधन के बाद यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अपीलीय प्राधिकारी को न केवल संबंधित सरकारी कर्मचारी को सुनना चाहिए बल्कि अपील में उसके द्वारा उठाए गए तर्कों से निपटने के लिए एक तर्कसंगत आदेश भी पारित करना चाहिए। हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं कि वर्तमान मामले में रेलवे बोर्ड जैसे न्यायाधिकरणों के तर्कसंगत निर्णय प्रशासनिक प्रक्रिया में जनता के विश्वास को बढ़ावा देंगे। वस्तुनिष्ठ विचार तभी संभव है जब दोषी नौकर को सुना जाए और अंतिम आदेशों के संबंध में प्राधिकरण को संतुष्ट करने का मौका दिया जाए जिसे उनकी अपील पर पारित किया जा सकता है। निष्पक्ष खेल और न्याय को ध्यान में रखते हुए यह भी आवश्यक है कि ऐसी व्यक्तिगत सुनवाई दी जाए।"

(17) उपरोक्त टिप्पणियों से कोई संदेह नहीं रह जाता है कि याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर देना अपीलीय प्राधिकारी का दायित्व है।

(18) श्री गुप्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर अब विचार किया जा सकता है। एफ.एन. के मामले में रॉय (सुप्रा) के अनुसार, सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि प्राकृतिक न्याय का कोई नियम नहीं है कि हर स्तर पर एक व्यक्ति व्यक्तिगत सुनवाई का हकदार है। उपरोक्त टिप्पणियों को सुप्रीम कोर्ट ने स्टेट बैंक ऑफ पटियाला (सुप्रा) के मामले में दोहराया है। फिर से ज्योति प्रकाश मित्तर (सुप्रा) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट भारत के संविधान के अनुच्छेद 273 के संदर्भ में भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों से निपट रहा था। मेसर्स जीसस सेल्स कॉर्पोरेशन (सुप्रा) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने देखा है कि विभिन्न स्थितियों और परिस्थितियों में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुपालन की आवश्यकता अलग-अलग होती है। न्यायालय इस बात पर जोर नहीं दे सकता कि सभी परिस्थितियों में और विभिन्न प्रावधानों के तहत, संबंधित व्यक्ति को व्यक्तिगत सुनवाई का अधिकार दिया जाना चाहिए। ये टिप्पणियाँ कराधान और राजस्व मामलों के संदर्भ में की गईं। उसमें याचिकाकर्ता आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 की धारा 4-एम की उप-धारा (1) के तहत अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश से व्यथित था। हमारी सुविचारित राय है कि उपरोक्त टिप्पणियाँ सुप्रीम कोर्ट किसी भी तरह से सुप्रीम कोर्ट द्वारा पहले देखे गए निर्णयों में निर्धारित कानून के विपरीत नहीं है।

(19) वर्तमान मामले में प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश (अनुलग्नक पी-12) दिनांक 16 जुलाई, 2003 (अनुलग्नक पी-12) इस प्रकार है:-

हरियाणा राज भवन
कार्यालय आदेश

मैंने श्री गुलाब सिंह, अपीलकर्ता के दिनांक 15 अक्टूबर, 2001 के स्मारक/अपील को अपने दिनांक 12 मई, 2003 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया है और

रजिस्ट्रार, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक को पत्र एचआरबी-यूए-32 के माध्यम से इसकी सूचना दे दी है। (29)-2004/4266, दिनांक 29 मई, 2003। विस्तृत आदेश नीचे दिया गया है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि श्री गुलाब सिंह, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के प्रमाणपत्र अनुभाग के अधीक्षक के रूप में काम करते समय, अनुभाग के प्रभारी अधीक्षक के रूप में प्रबंधकीय कौशल, पर्यवेक्षण और नियंत्रण में कमी पाए गए थे। रिकॉर्ड सेक्शन में बड़े पैमाने पर गड़बड़ी की जा रही थी। परिणाम पत्रक के साथ बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ की गई, परिणाम पत्रक के पन्ने हटा दिए गए, मनगढ़ंत और नकली परिणाम पत्रक तैयार कराए गए और मूल पत्रक के स्थान पर चिपका दिए गए। इसकी मौलिकता को नष्ट करने के आपराधिक इरादे और उद्देश्य से मूल चिह्नों को मिटा दिया गया और उनसे छेड़छाड़ की गई। नकली रिकॉर्ड इस तरह से तैयार किया गया था कि वह दिखने में असली जैसा लगे।

3. महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति ने परिणाम पत्रक में छेड़छाड़ और नकली/फर्जी विस्तृत अंक कार्ड/डिग्री जारी करने के मामले की जांच के लिए निम्नलिखित को शामिल करते हुए एक जांच समिति का गठन किया था:-

1. डॉ. आर.एन. मिश्र, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग। - संयोजक
2. डॉ. रविंदर विनायक, प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग। - सदस्य
3. श्री के.सी. डढवाल, उप रजिस्ट्रार। - सदस्य

इस जांच समिति की बैठक 7 मार्च, 2000, 8 मार्च, 2000, 9 मार्च, 2000, 10 मार्च, 2000, 22 मार्च, 2000 और 23 मार्च, 2000 को हुई और विश्वविद्यालय की संबंधित शाखाओं में कार्यरत विभिन्न कर्मचारियों की

विधिवत जांच की गई। मामला। जांच समिति द्वारा श्री गुलाब सिंह की भी जांच की गयी। जांच समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विश्वविद्यालय में बड़े पैमाने पर गड़बड़ी हो रही थी, जहां कुछ उम्मीदवारों को लाभ पहुंचाने के लिए आंतरिक कर्मचारियों की स्पष्ट मिलीभगत से परिणाम शीट के रिकॉर्ड के साथ छेड़छाड़ की गई थी।

4. जहां तक श्री गुलाब सिंह का सवाल है, जांच समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि कमी थी उनकी ओर से समय पर रिपोर्ट करना, खासकर जब शाखा के डीलिंग क्लर्क श्री काली राम ने उन्हें सूचित किया था कि उनकी शाखा द्वारा परिणामों का गलत सत्यापन किया गया था, श्री गुलाब सिंह को तुरंत कार्रवाई करनी चाहिए थी और स्कूल/कॉलेज के प्रिंसिपल को गलत काम करना चाहिए था। प्रमाणपत्र अनुभाग द्वारा सत्यापन की सूचना दे दी गई है तो उसे तुरंत सही स्थिति के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। बाद में जांच समिति के सदस्यों द्वारा इस चूक को उजागर किये जाने के बाद ही प्रमाणपत्र अनुभाग द्वारा यह कदम उठाया गया।

5. इस रिपोर्ट पर विचार करने के बाद तत्कालीन कुलपति के अनुमोदन से श्री गुलाब सिंह सहित सात विश्वविद्यालय कर्मचारियों को निलंबित कर दिया गया और आरोप पत्र दायर किया गया। बड़े पैमाने पर गड़बड़ी होने पर अधीक्षक के रूप में प्रबंधकीय कौशल, पर्यवेक्षण और नेतृत्व की कमी के लिए श्री गुलाब सिंह पर आरोप पत्र दायर किया गया था। परिणाम पत्रक के साथ बड़े पैमाने पर छेड़छाड़ की गई, परिणाम पत्रक से मूल पृष्ठ हटा दिए गए और फर्जी परिणाम पत्र तैयार किए गए और मूल पत्रक के स्थान पर नकली परिणाम पत्रक तैयार किए गए और चिपकाए गए, उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त मूल अंक मिटा दिए गए और छेड़छाड़ की गई। फर्जी रिकार्ड इस प्रकार तैयार किया गया कि वह असली प्रतीत हो और अधीक्षक के रूप में श्री गुलाब सिंह प्रभारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहे। श्री गुलाब सिंह ने उचित पर्यवेक्षण नहीं किया और लापरवाही बरती। जालसाजी के मामलों की सूचना उसने किसी भी वरिष्ठ अधिकारी को नहीं दी थी और वह स्वयं मिलीभगत में था और सीधे तौर पर रिकॉर्ड में हेराफेरी और छेड़छाड़ में शामिल था और इस प्रकार चूक और कमीशन के कृत्यों का दोषी था। दूसरे, वह अपने पद की गरिमा और पवित्रता बनाए रखने में

विफल रहे, क्योंकि नकली और मनगढ़ंत रिकॉर्ड के आधार पर डुप्लिकेट डीएमसी/डिग्री जारी की गई थी, जिसे उनके द्वारा सही और वास्तविक के रूप में सत्यापित किया गया था। वह स्वयं इस घपलेबाजी में शामिल थे और वह अनुशासनहीनता और कदाचार को नियंत्रित नहीं कर सके, जो महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में अधीक्षक के पद पर बैठे व्यक्ति के लिए अशोभनीय था। इस प्रकार उन्होंने बेईमानी से काम किया और अवैध और मौद्रिक लाभ के लिए शिष्य का उल्लंघन करके खुद के साथ दुर्व्यवहार किया।

6. श्री गुलाब सिंह सहित विश्वविद्यालय के सात कर्मचारियों द्वारा आरोप-पत्रों पर प्रस्तुत उत्तरों पर विचार करने के बाद सेवानिवृत्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री एस.एस. सिंह दहिया द्वारा नियमित जांच करने का आदेश दिया गया। जांच अधिकारी ने अपनी विस्तृत जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की और उनके निष्कर्षों पर विधिवत विचार करने के बाद, श्री गुलाब सिंह सहित पांच कर्मचारियों को विश्वविद्यालय की सेवा से बर्खास्तगी के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और उनके जवाबों पर विचार करने के बाद अंततः उन्हें विश्वविद्यालय की सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। कारण सूचना.

7. मैंने श्री एस.एस. सिंह दहिया, जिला एवं सत्र न्यायाधीश (सेवानिवृत्त) द्वारा की गई प्रारंभिक जांच रिपोर्ट और नियमित जांच रिपोर्ट और उसके निष्कर्षों का अध्ययन किया है। मैंने 13 सितंबर, 2001 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक में पारित संकल्प संख्या 3 को भी पढ़ा है, जिसके तहत श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक को सेवा से बर्खास्त करने का निर्णय लिया गया था। मैंने आदेश संख्या EN-11/2k 1/13733, दिनांक 24 सितंबर, 2001 का भी अवलोकन किया है, जिसके तहत श्री गुलाब सिंह को विश्वविद्यालय की सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था और अपील दिनांक 15 अक्टूबर, 2001 को धारा 9 की उप-धारा 14 महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय अधिनियम, 1975 के तहत दी गई थी।

8. आरोपों की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि श्री गुलाब सिंह के खिलाफ आरोप पूरी तरह से, ठोस और निर्विवाद रूप से साबित हो गए हैं, मेरे पास महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के निर्णय से असहमत होने का कोई कारण नहीं है। रोहतक

ने 13 सितंबर, 2001 को हुई बैठक में पारित प्रस्ताव संख्या 3 के तहत लिया। इसलिए, मैं श्री गुलाब सिंह, अधीक्षक के 15 अक्टूबर, 2001 के स्मारक/अपील जो उन्होंने विश्वविद्यालय सेवा से बर्खास्तगी के खिलाफ दायर किया था। को खारिज करता हूं,

(एसडी.)....
कुलाधिपति.
4-7-03"।

(20) यह प्रदर्शित करने के लिए कि यह सकारण आदेश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है, उत्तरदाताओं-विश्वविद्यालय के चांसलर द्वारा पारित पूरे आदेश को पुनः प्रस्तुत करना आवश्यक था। आदेश में ऐसा कोई कारण नहीं बताया गया है जिससे कुलाधिपति को याचिकाकर्ता द्वारा दायर विस्तृत अपील को खारिज करना पड़े। आदेश में अपील के आधार का भी जिक्र नहीं है। आदेश केवल बर्खास्तगी के आदेश के पारित होने तक कार्यवाही के अनुक्रम को बताता है। राम चंदर के मामले (सुप्रा) में, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अपीलीय प्राधिकारी को न केवल संबंधित सरकारी कर्मचारी को सुनना चाहिए, बल्कि अपील में उसके द्वारा उठाए गए तर्कों से निपटने के लिए एक तर्कसंगत आदेश भी पारित करना चाहिए। राम चंदर के मामले (सुप्रा) में ये टिप्पणियां सुप्रीम कोर्ट द्वारा भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल[15] (15) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून की व्याख्या करते समय की गईं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून बाध्यकारी है। इसलिए, हम श्री बलराम गुप्ता की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि कुलाधिपति/अपीलीय प्राधिकारी के लिए याचिकाकर्ता को अपीलीय चरण में सुनवाई का अवसर देना आवश्यक नहीं है। चूँकि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन हुआ है, इसलिए इस न्यायालय के लिए याचिकाकर्ता द्वारा की गई शिकायतों के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यदि याचिकाकर्ता को सुनने के बाद भी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपील खारिज कर दी जाती है तो आगे की कार्यवाही में इस पर विचार किया जा सकता है।

(21) उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका को इस हद तक अनुमति दी जाती है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय के चांसलर द्वारा पारित आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2003 (अनुलग्नक पी-12) को रद्द कर दिया जाता है। याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने और तर्कसंगत, स्पष्ट आदेश पारित करने के बाद, मामले को कानून के अनुसार निर्णय लेने के लिए अपीलीय

(15) 1985 (2) एस.एल.आर. 576

प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाता है। इस निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के दो महीने के भीतर अपील पर निर्णय किया जाए।

आर.एन.आर.

अस्वीकरण :- स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

प्रिंस कुमार

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी